# 1947 के बाद पलामू जिले के सामाजिक संरचना में हरिजनों की स्थिति में परिवर्तन एवं सुधार

**डॉ0 बालमुकुन्द पाण्डेय***

*भारतीय हिंदू जाति व्यवस्था में एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसकी जाति से होता है, जो जाति के उच्च एवं निम्न क्रम पर आधारित है। इसे ही प्रदत प्रस्थिति कहते हैं जिसमें व्यक्ति का जन्म होता है और उसकी मृत्यु भी। इसके अलावा भारत में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण अर्जित प्रस्थिति के आधार पर भी होता है जिसे व्यक्ति अपने द्वारा किये गये कार्यों के आधार पर समय समय पर बदलता रहता है। हरिजन को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निम्न स्तर पर रखा जाता है और इनका श्रेणीक्रम दलित जाति के आधार पर निर्धारित होता है। मूल रूप से हरिजन शब्द का प्रथम प्रयोग गांधीजी ने किया था जिसका अर्थ भगवान का आदमी होता है परंतु क्या वास्तविक तौर पर इनको भगवान का आदमी माना जाता है? यह एक यक्ष प्रश्न है। जहां तक भारतीय जाति व्यवस्था की बात है तो यहां पर हरिजनों को निम्न स्तर का व गंदे कार्य करने वाला माना जाता है। जिसको समाज की मुख्य धारा से अलग व अस्पृश्यता जैसे लांक्षणों से निर्धारित किया जाता है। जहां तक पारंपरिक भारतीय जाति व्यवस्था की बात है तो हरिजन की स्थिति समाज में निम्नतर थी। उनके साथ छूआछूत होता था, सामाजिक भेदभाव आम बात थी तथा सामाजिक निम्न प्रस्थिति प्रदान की जाति थी। परंतु भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, जनजागरूकता एवं उनकी सामाजिक हिस्सेदारी ने नीति नियंताओं को उनकी आवाज सुनने के लिए मजबूर कर दिया जिसका प्रतिफल भारतीय संविधान में उनके संरक्षण के लिए किये गये उपायों के देख कर समझा जा सकता है। परंतु क्या वास्तविक तौर पर हरिजनों की स्थिति में सुधार हुआ है स्वतंत्रता के बाद इनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ और वे समाज की मुख्य धारा के भाग बने? इन्हीं प्रश्नों के उतर पाने के लिए इस शोध पत्र में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन पलामू जिले के चार गांवों के अध्ययन से संबंधित है। जहां पर हरिजनों की स्थिति में हुए सुधार का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।*

**मुख्य शब्दः** दलित, हरिजन, प्रस्थिति, संरचना, परिवर्तन, ग्रामीण समाज

हरिजनों के साथ भारतीय समाज या सामाजिक प्रणाली में होने वाला भेदभाव मूल रूप से भेदभाव, निम्न स्तरीकरण, शोषण और अस्पृश्यता के आाधार पर दिखाई पड़ता है। जो हिंदू जाति व्यवस्था में गहरे तौर पर बना हुआ है। भारतीय समाज में होने वाला भेदभाव, जिसे सबसे ज्यादा महत्व दिया गया है वह है जाति के आधार पर होने वाला भेदभाव। परंतु विविध जातियों के बीच पारस्परिक संगुठन के आधार पर जाति संबंधित भेदभाव को सिर्फ सामाजिक स्तर पर ही नहीं माना जा सकता है बल्कि इसका विस्तार अन्य क्षेत्रों जैसे सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ता है। सांस्कृतिक क्षेत्र में उंची जातियों का पूजा पाठ और धार्मिक गतिविधियों को संपादित करने में निम्न जातियों के प्रति असहिष्णुता दिखाई पड़ती है। यह मुख्य तौर ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। हरिजनों के विरूद्ध होने वाला भेदभाव जमीन के प्रयोग, व्यापार, खाद्य सुरक्षा योजनाओं, सार्वजनिक जल का प्रयोग, घर की सुविधा, स्वास्थ्य सुविधाओं, डाक एवं तार सुविधाओं, सड़क एवं परिवहन, शिक्षा एवं बौद्धिक शक्ति, राजनीतिक सशक्तिकरण इत्यादि, में विशेष तौर पर दिखता है। इसलिए भारतीय समाज में जाति आधारित भेदभाव अत्यधिक विस्तृत स्वीकार्य एवं कल्पना से परे गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। जहां तक आर्थिक क्षेत्र की बात है जैसा की राम[1] ने बताया है, इनके अनुसार हरिजन के साथ भेदभाव दो स्तरों पर होता है सार्वजनिक क्षेत्र में एवं निजी क्षेत्र में।एक तो तब जब की नौकरी देने वाला किसी गैर दलित समुदाय का होता है और पारंपरिक सोच वाला होता है वहीं दूसरी ओर संस्था में काम करने वाले अन्य कामगारों के द्वारा जो हरिजन के साथ भेदभाव करते हैं। वंचना एवं शोषण हरिजनों के सामाजिक अलगाव के दूसरे प्रमुख कारण हैं। यह सत्य है कि दलितों को हमेशा से सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक जीवन में सामाजिक विलगाव का सामना करना पड़ा है और यही परिस्थिति उनके शोषण एवं वंचना के लिए जिम्मेदार है जो भारतीय गांवों मे आसानी से देखा जा सकता है।

* **समाजशास्त्र, राँची विश्वविद्यालय, राँची**

अस्पृश्यता की भावना दलित वंचना का दूसरा जिम्मेदार कारक है। अस्पृश्यता का स्रोत वर्णश्रम धर्म है, जो उच्चता एवं निम्नता के प्रस्थिति क्रम पर आधारित है। सामान्य स्रोतों के अनुसार यह माना जाता है कि जाति की उत्पति वर्ण व्यवस्था का ही परिणाम है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था के विकास के दूसरे काल में जाति व्यवस्था की उत्पति हुई। जो शुद्धता एवं अशुद्धता की भावना से ओत प्रोत थी। यह विचार हरिजनों को जाति पहचान के आधार पर सामाजिक प्रणाली से अलग करता है। जैसा की हम जानते हैं, किसी भी तरह का संपर्क जैसे छूना, खाना खाना, पानी पीना, पानी निकालना आदि विचार हरिजन व गैर हरिजनों के बीच विभेद के लिए जिम्मेदार हैं। यह सत्य है कि द्विज वर्ण के लोग हरिजन के द्वारा पकाये गये भोजन एवं लाये गये पानी को स्वीकार नहीं करते हैं। यहां तक की वे साथ बैठ कर खाना भी नहीं खाते हैं। यद्यपि उंची जाति के लोग हरिजनों को विविध समारोहों में शामिल होने के लिए आमंत्रित करते हैं परंतु उनको अलग से भोजन दिया जाता है जो सामान्यतया सबके भोजन करने के बाद होता है। यह दिखाता है कि हरिजनों के साथ भेदभाव व्यक्तिगत तौर पर न होकर सामूहिक तौर पर होता है।[2]

इस आधार पर हम भारतीय समाज में स्थापित सामाजिक प्रस्थिति निर्माण की प्रक्रिया को आसानी से समझ सकते हैं। लिंटन के अनुसार यहां पर दो प्रकार की प्रस्थिति है प्रदत एवं अर्जित। प्रदत प्रस्थिति का आधार जन्म, उम्र, लिंग, नातेदारी, प्रजाति, जाति होती है यह व्यक्ति को समाज के द्वारा उसकी योग्यताओं एवं कुशलताओं को अलग रखते हुए दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी लड़के या लड़की की प्रस्थिति परिवार में उसके उम्र एवं लिग के आधार पर प्रदत प्रस्थिति है। दूसरी तरफ किसी भी व्यक्ति की अर्जित प्रस्थिति उसके व्यक्तिगत गुणों व क्षमताओं के आधार पर होता है। किसी भी व्यक्ति की प्रदत प्रस्थिति हमेशा से समाज में उसके स्तर को निर्धारित करता रहा है। इसलिए हरिजन ऐतिहासिक या पारंपरिक तौर अलगावित समूह के तौर पर समाज में रहे हैं। जिसमें उसकी कुशलता व गुणवता को नजरअंदाज किया जाता है।

डयूमा ने कहा है कि जाति के आधार पर संस्तरित व्यवस्था मूल रूप से पवित्रता एवं अपवित्रता की अवधारणा पर आधारित है। दूसरी ओर सबरवाल ने कहा है कि भारतीय समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति का निर्धारण निश्चित तौर पर उसकी प्रदत प्रस्थिति के आधार पर निर्भर करता है।[3]

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने बहुत सी ऐसी योजनाएं बनाई जिससे हरिजनों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाया जा सके। परंतु यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि कितने हरिजनों को इन सुविधाओं व सुधारों का लाभ मिल पाया है। यह सत्य है कि कुछ दलित जातियों की स्थिति में सुधार हुआ है परंतु इसमें से अधिकांशतया आज भी उसी स्तर पर दिखाई पड़ते हैं जहां वे पहले थे। इन परिस्थितियों के अध्ययन व बेहतर विश्लेषण के लिए ही यह अध्ययन किया गया है।

जहां तक भारतीय समाज के अध्ययनों की बात है तो जैम्स मैसे ने धार्मिक आधार पर दलितों के सामाजिक अलगाव को जानने की कोशिश की हैं उनका कहना है कि हिंदू धर्म ने प्रमुख तौर पर दलित भेदभाव की रूपरेखा भारतीय समाज में प्रस्तुत की है। दूसरी ओर ईसाई धर्म अपनाने वाले दलितों में इस प्रकार के भेदभाव का अभाव दिखाई पड़ता है क्योंकि वहां पर जाति संबंधी विभेद व अंतर न होकर वर्ग आधारित विभेद दिखाई पड़ता है।[4]

जहां तक स्वतंत्रता के बाद हरिजनों में स्थिति में सुधार की बात है तो यह उनके स्वयं के प्रयासों से ही संभव हो पाया है। उदाहरण के लिए लिंच ने आगरा शहर के जाटवों के अध्ययन में पाया है कि उनके स्थिति में परिवर्तन बढ़ती राजनीतिक भागीदारी के कारण ही संभव हो पाया है। जिसमें लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकार करना और उसमें अपनी भागीदारी दिखाना प्रमुख है। उन्होंने पाया की इस जाति ने अपने स्व मूल्यांकन तथा स्व सुधार पर जोर दिया जिससे हिंदू जाति व्यवस्था में आदर व उच्च सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त हो सके। उनमें गतिशीलता संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का परिणाम न होकर सक्रिय व अलग राजनीतिक भागीदारी रही है। इस स्थिति में जाटव राजनीतिक शक्ति तथा सक्रिय राजनीतिक सहभागिता कर पाये। जिससे रोजगार के अवसर का लाभ मिल पाया।

विद्यार्थी एवं मिश्रा[5] ने हरिजन के परिर्वतन के अपने ग्रामीण अध्ययन में चार सांस्कृतिक व भाषायी क्षेत्रों मगही, मैथिली, भोजपूरी एवं जनजातिय क्षेत्र का अध्ययन किया। जिसमें अनुसूचित जातियों को विविध श्रेणीयों जैसे भोक्ता, पनसवानिस, घासी, तुरी महली एवं चमार तथा मुसहर, रजवार व दुसाध का तुलनात्मक अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर किया। उनके अनुसार जनजातिय क्षेत्रों के दलित स्व रोजगार में संलग्न हैं जैसे कलाकार साथ ही अन्य समूह श्रमिकों के रूप में बडे बड़े जमींदारों के यहां भूमिहीन मजदूर के रूप में कार्य करते हैं।

यह सत्य है कि हरिजन सामाजिक आर्थिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े समुदाय हैं। विभिन्न विकास योजनाओं जैसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम, ज्वाहर रोजगार योजना इंदिरा आवास योजना इत्यादि, ने हरिजनों की आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन किया है। जहां झारखण्ड राज्य के पलामू जिले की बात है तो इन योजनाओं ने प्राथमिक तौर पर उनका पेशा व आयगत प्रस्थिति, शिक्षा व प्रशिक्षण, स्वरोजगार, स्वास्थ्य, सामाजिक जागरूकता व भागीदारी में परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

कोहन[6] ने जौनपूर जिले के माधोपुर गांव के चमारों के अध्ययन में पाया है कि ये गांव में एक सहयोगी की स्थिति प्राप्त हैं। जिसका कारण उनके गंदे कामों को करना जैसे जानवरों की खाल निकालना, जूते बनाना व मांस खाना है।यहां के चमार आर्थिक तौर पर अपनी जरूरतों के लिए यहां के ठाकुरों पर निर्भर करते हैं। जिसमें किरायेदार के रूप में, पारम्परिक वर्कस के रूप में कार्य करना प्रमुख है। आर्थिक रूप से चमार एक एकड़ जमीन पर खेती करते हैं परंतु इससे प्राप्त होने वाली आय मुश्किल से उनकी चार महीनों की जरूरतों को पूरी कर पाता है और बाकी के आठ महिनों के लिए वे कृषक मजदूर के रूप में काम करते हैं। वर्तमान स्थितियों में नगरीय रोजगार बढ़ा है जिसके बाद वे कॉटन एवं जूट मिल में काम करना शूरू किये साथ ही रिक्सवान के रूप में भी ये काम करते है। आधारभूत संरचना के विकास से उनके कार्य स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। आर्य समाज के धार्मिक सुधार आंदोलनों उनके सामाजिक गतिशिलता में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई है।

सुनंदा पटवर्धन[7] ने पूना शहर के अपने अध्ययन में किया कि यहां की महार, मांग, चमाभर एवं होलार समुदायों में व्यवहारिक व सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यहां पर दो स्तरों पर परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं– पहला भौतिक स्तर पर व दूसरा मूल्य प्रणाली के स्तर पर । यहां पर निम्न जातियां अपनी सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति को उपर उठा पाने में सफल हो पाई हैं।

रामाश्रय राय ने बिहार व झारखण्ड के दलितों के अपने अध्ययन में पाया की यहा के हरिजनों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है। जैसा की स्वतंत्रता के बाद होना चाहिए थां। उन्होंने पाया की दलित जातियों के कुछ खास लोगों को विकास व योजना गत उपलब्धि का लाभ मिल पाया जबकि उसी जाति के दूसरे अन्य लोग आज भी अपनी पूरानी स्थिति में ही पड़े हुए हैं। दूसरी ओर लाल ने अपने अध्ययन में बताया की दलित आज भी सामाजिक भेदभाव के मुख्य पीड़ित हैं।गांवों में आज भी जमीन आमदनी का मुख्य कारक है परंतु इस पर उंची जातियों के अधिकारों के चलते दलित व हरिजन जातियों की स्थिति निम्नतर बनी हुइ है।

अंततः अगर हम जजमानी व्यवस्था की बात को देखें तो पाते है कि यह विविध जाति समूहों को एक दूसरे से जोड़ने का काम करती है। जिसमें प्रत्येक जाति किसी खास कार्य में विशेषीकृत हैं जो दूसरे जाति के लोग नहीं कर सकते है। परंतु अब इसमें भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है क्योंकि जाति आधारित पेशा लंबे समय तक बनी हुई नहीं रह सकती है। इसलिए जजमानी व्यवस्था में परिवर्तन होने से हरिजनों की स्थिति व पेशा में भी व्यापक बदलाव दिखाई पड़ता है।[8]

**अध्ययन क्षेत्र**

इस अध्ययन के लिए पलामू जिले के चार गांवों पाटन, मनातू, सिंगरा व बांसडीह का चुनाव किया गया इसके चुनाव के पीछे मुख्य कारण यहां पर हरिजनों की उपलब्धता व अवलोकन के आधार पर निम्नतर सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति रही है। पलामू जिला मुख्यतया अपने पलाश लाह व महुआ के लिए जाना जाता है। यह पलामू कमिशनरी का मुख्यालय है। यहां की कुल आबादी 1904596 पु 1004890 महिला 899706 है। यहां की साक्षरता 57 प्रतिशत है। जिसमें अनुसूचित जातियों की संख्या

607594 है। इसमें पुरूष एवं महिला 304590 व 303004 हैं।[9] यहा का समाज अर्ध सामंति प्रकृति का है। उच्च जातियां यद्यपि कम संख्या में रहे हैं परंतु पारंपरिक तौर पर इन्होंने सामाजिक आर्थिक उच्चता तथा राजनीतिक शक्ति का लाभ लिया है। जबकि दलित अधिक संख्या में होने के बावजूद इनके इशारों पर काम करने वाले व निम्न सामाजिक प्रस्थिति वाले रहे हैं। परंतु वर्तमान स्वतत्रता व राजनीतिक तथा विकासवादी परिप्रेक्ष्य के कारण दलितों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है।

**निष्कर्ष**

इस अध्ययन के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाता है कि हरिजनों की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद काफी सुधार हुआ है उनको राजनीतिक व सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। परंतु फिर भी इनमें से अधिकांश संख्या आज भी पारंपरिक व पिछड़े सामाजिक परिस्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त हैं। जिससे उनकी स्थिति में जो परिवर्तन होना चाहिए था वह नहीं हो पाया है। इनकी सामाजिक प्रस्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता यद्यपि राजनीतिक व आर्थिक रूप से ये सशक्त हो पाये हैं परंतु सामाजिक पद व प्रतिष्ठा में ये अभी भी निम्नतर स्थिति में रह रहे है। जिसमें उच्च जातियों के साथ इनके संबंध हैं। यह सही है कि जातिगत भेदभाव व खान पान संबंधी प्रतिबंध तथा अस्पृश्यता जैसे विचारों में शिथिलता दिखाई पड़ती है। परंतु फिर भी इनको समाज में समानता का स्थान नहीं मिल पाया है।

यह भी कहा जा सकता है कि जाति आज भी भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है जहां एक व्यक्ति के जन्म के आधार पर उसकी सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण होता है। एक व्यक्ति जिसका जाति संस्तरण में निम्न स्तर है वह अन्य सामाजिक व आर्थिक स्थिति में भी निम्न स्तर पर ही बना हुआ है।

एक उतरदाता वीरेद्र राम के अनुसार यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ है परंतु उच्च जातियां आज भी जातिगत भेद भाव के कारण उनको नीचा समझती हैं। जो अभी भी समाज में बना हुआ है। व्यक्तियों के बीच का सामाजिक संपर्क ब्राह्मणवादी विचारधारा के आधार पर ही संचालित होता है। हिंदू धर्म शास्त्र उच्च जातियों को उच्च स्थानों पर रखती है परंतु निम्न जातियां व विशेष कर हरिजन आज भी निचले स्तर पर बने हुए हैं। जिससे पवित्रता व अपवित्रता की विचार धारा समाज में जीवित है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि पलामू जिले के हरिजनों में सामाजिक व आर्थिक स्थितियों में स्वतंत्रता के बाद सुधार तो आया है परंतु फिर भी सामाजिक मानसिकता व निम्न व्यवहार आज भी उनके साथ बना हुआ है जिसमें परिवर्तन व बदलाव किया जाना आवश्यक है।

**संदर्भ :**


1. नायडू, राम 2008, कास्ट सिस्टम एण्ड अनटचेबिलिटी इन साउथ इंडिया, मानक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 18–19
2. लिंटन, रालफ, 1936, द स्टडी ऑफ मैन एन इंट्रोडकशन, न्यूयॉर्क, अपलेटन सेंचुरी क्रॉफट
3. डयूमा, लुइस,1966, होमो हाइरारकिकसः द कास्ट सिस्टम एण्ड इटस इमप्लिकेषन ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
4. मैसी, जेमस, 1995, दलित इन इंडिया, मनोहर प्रकाशन नई दिल्ली
5. विद्यार्थी, एल पी एण्ड एन मिश्रा, 1977, हरिजन टूडे, क्लासिकल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. कोहन, बर्नाड, 1955, द चेंजिंग स्टेटस ऑफ ए डिप्रेस्ड कास्ट, इन विपेज इंडिया एडिटेड बाई मैकिम मेरियेट, एशिया पब्लिसिंग हाउस बॉम्बे
7. पटवर्धन, एस, 1973, चेंज एमंग इंडियास हरिजनः महाराष्ट्र ए केस स्टडी , ओरिएंट लॉगमैन, नई दिल्ली
8. भारती, इंदू, 1990, दलित गेन न्यू इज्जत, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली, मई 5–12 1990
9. भारत की जनगणना 2001